ISSN 2278-8808 SJIF 2014 = 4.889
An International Peer Reviewed & Referred
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL
FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

षोडस संस्कार भारतीय संस्कृति के अनमोल घटक

पल्लवी सिंह, Ph. D.

एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

संस्कार शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ विभिन्नता लिए हुए है। संस्कार शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृञ' धातु में धञ् प्रत्यय लगाकर सुट् के आगम् द्वारा बनता है। फलतः संस्कृत कोशों में इसके विभिन्न अर्थ दिये गये हैं। (1) **"योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्काराः इत्युच्यन्ते"** अर्थात् किसी पदार्थ विशेष में योग्यता धारण कराने वाली क्रियाएँ संस्कार कहलाती हैं। (2) **"संस्कारोनाम स यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्य चिदर्थस्य"** संस्कार उसे कहते हैं जिसके द्वारा कोई पदार्थ किसी कार्य विशेष के योग्य हो जाता है। (3) "गुणान्तराधानं संस्कारः" दूसरे गुणों का किसी पदार्थ विशेष में आधान (धारण) कर देना ही संस्कार कहलाता है। न्याय दर्शन के अनुसार – भावों को व्यक्त करने की क्षमता रखने वाली आत्म व्यंजक शक्ति को संस्कार कहा गया है। मनुस्मृति के अनुसार – धार्मिक विधि विधान एवं पवित्र क्रिया को संस्कार कहा जाता है।[1]

इस प्रकार संस्कार शब्द की समग्र रूप में परिभाषा इस प्रकार हो सकती है – **"संस्कारों हि नाम गुणाधानेन व स्याद् दोषापनयेन वा"** संस्कार वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से दोषों को दूर तथा गुणों का आधान (धारण) किया जाता है। मानवीय जीवन को सुन्दर उच्च बनाने के लिए हमारे पूर्वजों ने जो विधान बनाये हैं, उन्हीं को संस्कार कहा जाता है। वेदों में संस्कारों का उल्लेख नहीं है। परन्तु ये उस समय भी विद्यमान थे। वेदों के कर्मकाण्डीय मन्त्र इसके साक्षी हैं।[2] संस्कारों का शास्त्रीय विवेचन सर्वप्रथम वृहदारण्यकोपनिषद् में प्राप्त होता है। संस्कारों की संख्या के विषय में ग्रंथों में भेद देखने को मिलता है। ग्रह्य सूत्रों में अन्त्येष्टि संस्कार का उल्लेख नहीं है। उसे अशुभ माना गया है। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में इसकी गणना की गयी है। आश्वलायन गृह्य सूत्र और पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार संस्कारों की संख्या ग्यारह एवं तेरह है। वैरवानस गृह्यसूत्र में अठारह संस्कार वर्णित हैं। संस्कारों में

आज माने जाने वाली संख्या षोदश (सोलह) है। गर्भाधान, पुंसवत, सीमात्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्त्तन, विवाह, वानप्रस्थ, सन्यास एवं अन्त्येष्टि। प्रारम्भिक तीन संस्कार बालक के जन्म से पूर्व किए जाते हैं; छः संस्कार शैशवावस्था के हैं, तीन संस्कार शिक्षाकाल के, अन्तिम तीन विवाहोपरान्त तथा अन्तिम संस्कार अन्त्येष्टि मृत्यु के पश्चात् की जानी है।

इनकी संख्या के विषय में गृह्यसूत्र और धर्म सूत्र में एक मत नहीं है। फिर भी आज 16 संस्कारों का ही प्रचलन है।

1. गर्भाधान – "गर्भ संधार्यते येन कर्मणा तद्गर्भाधानमित्यनुगतार्थं कर्मनामधेयम्"[3] सर्वप्रथम संस्कार है। "गर्भास्याऽऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरीकरण यास्मिन्येन वा कर्मणा तद गर्भाधानम्" अर्थात् गर्भ का धारण अथवा वीर्य का स्थापन गर्भाशय में स्थिर करना, जिस क्रिया से होता है, उसी को गर्भाधान कहते हैं। सुश्रुत ने गर्भाधान के लिए कन्या की उम्र 16 और पुरुष की आयु 25 वर्ष बताई है।

पारस्कर गृह्यसूत्रों एवं शांख्यगृह्यसूत्रों में बतलाया गया है कि गर्भधारण के पूर्व स्त्री रजस्वला होकर चौथे दिन के उपरान्त पाँचवें दिन स्नान कर शुद्ध हो उसी दिन **"आदित्यं गर्भमिति"** इस मंत्रों से आहुति देते हुए हवन करें उस समय पत्नी पति के वाम भाग में बैठे और पति वेदों के पश्चिमाभिमुख पूर्व दक्षिण वा उत्तर दिशा में यथाभीष्ट मुख करके बैठें तथा ऋत्विजों को चारों दिशाओं में यथामुख बैठना चाहिए। पुत्र प्राप्ति की कामना करें।

2. पुंसवन – पत्नी द्वारा गर्भ धारण के दूसरे और तीसरे महीने में होने वाले संस्कार को पुंसवन कहते हैं। गर्भस्थ वीर्य की पुष्टि के लिए यह संस्कार किया जाता है। पारस्पुर एवं आश्वलायन गृह्यसूत्रों के अनुसार – यह संस्कार द्वितीय या तीसरे महीने में करें। **"अथ पुंसवन पुरा स्यन्दंत इति मासे द्वितीय तृतीये वा।"** इस समय गर्भिणी स्त्री को दक्षिण नासापुर से सुँघाते–वट वृक्ष की जटाा तथा उसकी पत्ती और गिलोय, ब्राह्मी औषध और सूँठी को दूध के साथ थोड़ा–थोड़ा नित्य खिलाऐं। अधिक शयन, अधिक आषणा, अधिक खट्टा, तीखा, कड़वा आदि वर्जित है। आहार सूक्ष्म हो, क्रोध, द्वेष, लोभादि द्वेषों में न फँसे। चित्त को सदैव प्रसन्न रखें। शुभाचरण करें। इससे बच्चे पर अच्छा प्रभाव होगा।

3. सीमान्तोन्नयन – चतुर्थ गर्भमासे सीमान्तोन्नयनम्।[4] आश्वलायन गृह्य सूत्र 1/14/1

यह चौथे मास के उपरान्त होता है। इसमें छठा व आठवाँ मास में जब, पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा, मूल, श्रवण, अश्विनी और मृगशिरा आदि पुलिंग वाचक नक्षत्र हो, वहीं दिन शुभ माना जाता है। इसमें पति अपने हाथों से स्वपत्नी के केशों में सुगंधित तैल डालकर कंघी करे, उसके केशों का सुन्दर जूड़ा बाँधकर यज्ञशाला में प्रवेश करावे। उस समय वीणा आदि वाद यंत्र बजाये जायें तथा समावेद में मंत्रों का उच्चारण हो, उस दिन गर्भिणी खिचड़ी से हवन करे तथा वृद्धाएँ एवं समीप बैठी उत्तम स्त्रियाँ उसे आशीर्वाद दें।

"ओं वीर प्रसूस्त्वं भव, जीवप्रसूस्त्वं जीव पत्नी त्वं भव।"– वैदिक काल में गर्भाधान के समय स्त्री की अनेक प्रार्थनाएँ मिलती हैं यथा– **"विष्णु गर्भाशय निर्माण करें, हे सरस्वती भ्रूण को स्थापित करो"**[5]

4. जातकर्म – यह संस्कार प्रसव पीड़ा से लगा कर नालछेदन तक के कार्यों से सम्बन्धित है। प्रसव पीड़ा के समय गर्भिणी के शरीर को जल से मार्जन करना बताया गया है। पुत्र उत्पन्न होने पर उसे शुद्ध कर कोमल वस्त्र में पोंछ कर पिता के गोद में देवें और पिता यज्ञ वेदी के समीप जाकर घी और मधु को सोने की श्लाका से **"ओं प्रते ददामि मधुनो घृतस्य वद सविन्ना प्रसूतं मधोनाम्।" आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोके अस्मिन्।**[6] शतायु के लिए अशीर्वाद ग्रहण करें।

5. नामकरण – जन्म के उपरान्त दसवीं रात्रि बीत जाने पर नामकरण संस्कार होता है। **"दशभ्या मुत्थाप्य पिता का नाम करोति"**[7] अर्थात् पिता ही बालक का ग्यारहवे दिन सुन्दर नाम रखें। उस समय यज्ञ हवन भोग आदि करने चाहिए गृह शुद्धि होती है। दो या चार अक्षरों का सुन्दर नाम रखना चाहिए।

6. निष्क्रमण – पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार जन्म के चतुर्थ मास में यह संस्कार होता है। **"चतुर्थ मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्यक्षुः सिति।"**[8] उस समय बालक को स्नान कराकर तथा सुन्दर वस्त्र पहनाकर यज्ञवेदी के पास लाया जाता है। यज्ञ हवन के उपरान्त शुद्ध वायु में भ्रमण करवाया जाता है तथा दिन में सूर्य और रात्रि में चन्द्रमा के दर्शन कराये जाते हैं।

अन्नप्राशन– षष्ठ मास्यत्र प्राशनम्। धृतौदनं तेजस्कामः।। दधि मधु घृत मिश्रितमन्नं प्राशयेत्।[9] इस समय षष्ठ मास में बालक को अन्नप्राशन हो। उसे घृतयुक्त भात अथवा दही शहद और घी मिश्रित अन्न खिलाया जाय।

1. दो दाँत निकल आने पर अन्नप्राशन होता है।
2. चावल खाओ, जौ खाओ, उरद की दाल खाओ और तिल खाओ। तुम्हारा यह भाग उत्तम फल प्राप्त करने के लिए नियत किया गया है। ऐ दाँतों, माता–पिता को कष्ट न देना।[10]

8. चूड़ा कर्म – इसे केशच्छदेन संस्कार भी कहते हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार – तृतीय वर्ष ।।तृतीय वर्षे चौलम्।।

नाई बाल हटाये और उसके बाद यह कार्य जंगल में लेजाकर गड्ढ़ा खोद कर उसे बाल गाड़ दिया जाये। गौशाला, नदी या तालाब के किनारे पर उसको गाड़ देता है तथा क्षौर होने के उपरान्त बालक के सिर पर मक्खन और मलाई मलकर स्नान कराया जाता है। सुन्दर वस्त्र पहना कर उसको गुरुजन आशीर्वाद देते हैं।

9. कर्ण बंध – इस कान छेदन भी कहते हैं। यह जन्म के तीसरे या पाचवें वर्ष में होता है। **"कर्णवेधों वर्षे तृतीये पंचम् वा।"** प्रातःकाल बालक को स्नान के पश्चात नूतन वस्त्र पहनायें तथा हाथ में खिलौना और आगे कुछ खाने का पदार्थ रखे जाते हैं। वैद्य या स्वर्णकार पहले दाहिने फिर बाँये कर्ण का भेदन

करता है। इनमें शलाका रखा जाता है, ताकि छिद्र बन्द न हो। औषधि लगायी जाती है ताकि कान न पके।

10. उपनयन संस्कार – यज्ञोपवीत संस्कार भी कहते हैं। इसका उल्लेख वैदिककाल में अनेक स्थानों पर किया गया है।[11] ब्राह्मणकाल तक आते आते उपनयन की विधि पूर्णरूपेण कर्मकाण्डी हो गई थी।[12] आश्वलायन और पारस्कर गृह्यसूत्रों में उपनयन का तात्पर्य था, आचार्य के समीप जाकर ब्रह्मचर्य जीवन में प्रवेश करना।[13] ब्राह्मण बालक का उपनयन 8 वर्ष में, क्षत्रिय का ग्यारह वर्ष में, वैश्य का 12 वर्ष में करने का आदेश है। शास्त्रों में भी लिखा है कि यदि उपनयन ब्राह्मण का 16, क्षत्रिय का 22 एवं वैश्य का 24वें वर्ष में हो तो वो पतित हो जायेंगे। मनुस्मृति में ब्राह्मण बालक का जन्म से पाँचवें वर्ष में, क्षत्रिय बालक का 6 वर्ष में, वैश्य का 8वें वर्ष में होना बतलाया गया है। किसी भी ऋतु में यह संस्कार सम्भव है। प्रातःकाल का समय उचित माना गया है।

ब्रह्मवर्चस कांमस्य कार्य विप्रस्य पंचमे राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्ये हार्थिनोऽपि।[13]

इस संस्कार को भारतीय ने महत्व दियाहै, पिता आचार्य का चयन करके उसके सम्मुख पुत्र को बिठाकर ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा कराता था। आचार्य उपनयन शिष्य पर विशेष कृपा करते और शिष्य भी सदा गुरु के अनुरूप एवं अनुकूल आचरण ब्राह्मण के नियमों से सम्बद्ध है। सूत्र (कल्प) करता था। अथर्ववेद में आचार्य कर्म के महत्त्व को प्रकाशित कर कहा गया है –

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिनं वृणुते गर्भमन्त।[14] अर्थात् आचार्य अपने उपनयमान ब्रह्मचारियों के लिए उतनी सावधानी एवं ममता रखे जितनी गर्भस्थ शिशु के लिए माता रखती है।

11. वेदारम्भ – गायत्री मंत्र कण्ठस्थ कर सांगोपाङ्ग चारों वेदों का अध्ययन करने के लिए जो नियम धारण किया जाता है, उसे वेदारंभ संस्कार कहते हैं। इसमें बालक कॉपीन, एक कटिवस्त्र और एक उरीय धारण करके दण्ड हाथ में लेता है। आचार्य के आधीन रहकर सांगोपाङ्ग वेदों का अध्ययन प्रारम्भ करता है। यह संस्कार किसी शुभ दिन को देख कर एक वर्ष के अन्दर करना चाहिए।

12. समावर्त्तन – वेद उत्तम शिक्षा एवं पदार्थ विज्ञान को पूर्ण रूप से प्राप्त करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए विद्यालय छोड़ा जाता है। यह समावर्त्रन संस्कार है। वेदाध्ययन की समाप्ति पर इसका विधान लिखा गया।

वेद समाप्तिं वाययति। वेदं समाप्त स्नायाद्। ब्रह्मचर्यवाष्ट चत्वा रिंशतकम्। (पारस्कर गृह्यसूत्र)

इसमें मेखला, दण्ड, कोपिन का त्याग कर सुगन्धित द्रव्य से शरीर को मलकर सुन्दर वस्त्र व पीताम्बर धारण करता है। वस्त्रालंकार – से सुशोभित हो, गुरु से आशीर्वाद ग्रहण करता है तथा गृह को प्रस्थान करता है।

"तत्र समावर्तनं नाम वेदाध्ययनान्तरं गुरुकुलात् स्वागृह्यागमनम।" दोपहर में स्नातक ब्रह्मचारी कमरे से बाहर आकर गुरु को प्रणाम करके दक्षिणा भेंट करता था तथा विद्यार्थी जीवन की समाप्ति के लिए अनुमति प्रदान करने की प्रार्थना गुरु से करता था–

विद्यान्ते गुरुमर्थेन निमन्त्र्य कृतानुज्ञानस्य वा स्नानमिति।[15]

इसके पश्चात स्नातक अन्तिम बार वैदिक अग्नि में आहुति देता था और ब्रह्मचर्य के तेज को त्यागते हुए अग्नि से समृद्धि प्राप्त कर, तिल एवं दही का भोजन करके अपनी दाढ़ी, नाखून, केशों को कटवाता था। जिन माला, हार, उष्णीय, अन्जन, उपानह आदि वस्तुओं का अब तक निषेध था, उसे यह धारण करता था। आचार्य के सम्मुख गृहस्थ जीवन में जाने की आज्ञा लेता था। **"महद्वैएतद् भूतं यत् स्नातकः।**[16] उसे गुरु भावी जीवन के लिए उपदेश देता था। यह 24 से 25 वर्ष की आयु में किया जाता था। समावर्तन को दीक्षान्त समारोह भी कहा जाता है।

13. विवाह संस्कार – विवाह की परम्परा प्राचीनकाल से ही अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी गयी है। अविवाहित पुरुष बिना पत्नी के मानो अधूरा है तथा पत्नी से रहित अयज्ञिय है –

अथो अर्द्धो वां एष आत्मनः यत् पत्नी। अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः।[17]

यह संस्कार पुण्य नक्षत्र एवं शुभ दिन में शुभ गोत्र की कन्या खोजकर किया जाता है।

"पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वात" – पारास्कर गृह्यसूत्र

इस प्रकार मनु स्मृति में आठ प्रकार के विवाह की चर्चा है – ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। **ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्तयलंकृता त्वग्रजन्मनः।।**[18] **58–62** इसमें ब्राह्म ही सर्वश्रेष्ठ है। इसमें कन्या के योग्य सुशील, विद्वान पुरुष का सत्कार करके कन्या को वस्त्रालंकार से सुसज्जित कर उत्तम वर को बुलाकर कन्या दी जाती है। यह संस्कार यज्ञ वेदी में अग्नि को साक्षी बनाकर किया जाता है तथा वर और वधू दोनों आजीवन परस्पर सम्बन्ध सूत्र में बँधने की प्रतिज्ञा करते हैं।

इस समय स्त्री 16 वर्ष की और पुरुष 25 वर्ष का होना चाहिए। यह वैदिककाल में विवाह की उम्र थी। परन्तु मनु स्मृति में मनु ने स्त्री और पुरुष में मात्र 3 वर्ष का अन्तर माना है।

14. वानप्रस्थ – जीवन के तृतीय भाग में मनुष्य वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। वह जीविकोपार्जन तथा अन्य सांसारिक कार्यों से विरक्त हो जाता है। किन्तु शिखा सूत्र संध्योपासन, अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मो का त्याग नहीं करता। इस आश्रम में विधिवत् प्रवेश करने को ही वानप्रस्थ आश्रम कहते हैं।

15. सन्यास – लोभ मोहादि के आचरण को छोड़ पक्षपात रहित होकर विरक्त होता हुआ जब मनुष्य पृथ्वी में परोपकारार्थ भ्रमण करने को उद्धति होता है; उस समय यह संस्कार किया जाता है। यह आयु के चौथे भाग में अर्थात् 70 के बाद होता है। इसमें प्रजापति परमात्मो को निमित्त कर **"प्रजापत्येष्ठि यज्ञ"**

करके यज्ञोपवित छोड़कर आह्वनीय गाह्यर्पत्य और दक्षिणात्य नामक अग्नियों को आत्मा में समारोपित करके सन्यास लिया जाता है।

16. अन्त्येष्टि संस्कार – मृत्यु के पश्चात मनुष्य के मृत शरीर को नष्ट करने के लिए जिस विधि विधान का प्रयोग होता है, वह "अन्त्येष्टि" कहलाता है। यह अन्तिम संस्कार है। मृत्यु के उपरान्त मृत शरीर का किया जाता है। मृतक को स्नान कर चंदन आदि लेपन कर नवीन वस्त्रों से लपेटकर श्मशान ले जाते हैं तथा वेदी बनाकर लकड़ियों की चिता पर शव को रख कर चिता को प्रज्वलित किया जाता है। इसके बाद वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए आहूति दी जाती है। मृत शरीर के भस्म को लेकर व्यक्ति घर लौटता है, तीसरे दिन अस्थियों का संचय करके उन्हें किसी पवित्र जल में प्रवाहित कर देता है। 10 या 11वें दिन पिण्ड दान किया जाता है।

इन संस्कारों का भारतीय संस्कृति में प्रमुख एवं विशिष्ट योगदान है। इसके चार प्रयोजन हैं – पवित्रता, वैदिक अध्ययन कर्त्तव्य आदि की उपयोगिता उत्सव के प्रति रुचि और समाजिकता इनका समुचित पालन कर व्यक्ति समृद्ध एवं सुखी रह सकता है।

सोलह संस्कारों के उपर्युक्त वर्णन में उनका महत्व बहुत स्पष्ट हो जाता है। हिन्दुओं के जीवन में जन्म के पूर्व गर्भ में आने से लेकर मृत्यु के पश्चात् तक इन संस्कारों का चक्र चलता रहता है। मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए ये संस्कार अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक हैं। मानव शरीर की शुद्धि, पवित्रता एवं परिष्कार में इन संस्कारों का विशेष योगदान रहा है। मनुष्य की इहलौकिक एवं आध्यात्मिक पूर्णता के लिए ये संस्कार पूर्ण सहायक रहे हैं अनेक सामाजिक समस्याएँ और व्यक्तिगत समस्याएँ इनके प्रतिपालन से समाप्त हो जाता है। यह जीवन को गतिशील एवं सुव्यवस्थित करता है। जन साधारण ज्यों–ज्यों संस्कारों के प्रति उदासीन हो रहा है, वहाँ सामाजिक विखण्डता अपना स्थान ग्रहण कर रही है। परिवर्तन तो युग का स्वभाव है, किन्तु उस परिवर्तन के आग्रह से अपने प्राचीन आदर्शों को विस्मृत न किया जाए। संस्कारों की उपयोगिता और महत्व की दृष्टि से इन्हें स्वीकारना आवश्यक है। समस्त संस्कार भारतीय संस्कृति की विशिष्टता एवं धरोहर हैं और पुरोधाओं का इसे अनुकरणीय बनाना आवश्यक है।

सन्दर्भ सूचीः

मनु स्मृति 2/25
ऋग्वेद 10/85, 183–184
ऋग्वेद 10/84
आश्वलायन गृह्यसूत्र 1/14/1
ऋग्वेद 10/84
आश्वलायन गृह्यसूत्र
पारास्कर गृह्यसूत्र
पारास्कर गृह्यसूत्र
आश्वलायन गृह्यसूत्र

ऋग्वेद 6/140/8
ऋग्वेद 3/8/45, अथर्ववेद 11/5/15
शतपथ ब्राह्मण 1/2/1–81
मनु स्मृति 2/31
अथर्ववेदः 11/5/31 (पारस्कर गृह्यसूत्र)
आश्वलायन गृह्यसूत्र 3/8
आश्वलायन गृह्यसूत्र 3/9/8
तैतिरीय ब्राह्मण 2/9/4/7, 2/2/2/६
मनु स्मृति 3/21, याज्ञवल्क्य स्मृति 1/58–61